अध्याय -40
मानव के प्रमुख एवं सामान्य रोग
(Important and Common Human Diseases)

स्वस्थ शारीरिक संपुष्टता, मानसिक व सामाजिक पुष्टता की एक अवस्था है। स्वस्थ एवं निरोग रहने की प्रवृत्ति मनुष्य समेत प्रत्येक जीवधारी में होती है। स्वास्थ्य से तात्पर्य हैं जीव का आयु, आनुवंशिकी व लिंग के अनुसार शारीरिक, कार्यिकीय क्षमता में निपुणता, संक्रामकता से लड़ने की क्षमता, मानसिक परिपक्वता व सामाजिक जीवों में स्वस्थ सामाजिक क्रियाओं का निष्पादन। प्राकृतिक एवं प्रदूषण मुक्त वातावरण में इसकी सम्भावना काफी रहती है। किन्तु जनसंख्या वृद्धि एवं बढ़ते औद्योगिकीकरण के कारण मानव का आवासीय पर्यावरण काफी प्रदूषित होने लगा व शहरी जनसंख्या में अत्यधिक वृद्धि के कारण गन्दगी और बीमारियाँ बढ़ने लगी। विश्व स्वास्थ्य संगठन (W.H.O.) की मान्यता के अनुसार जब जीव शरीर के सभी अंग-प्रत्यंग आपस में व बाह्य वातावरण के साथ उचित व वांछित सन्तुलन बनाये रखते हुए सही रूप से कार्य करते हों, तो ऐसी स्थिति में शरीर स्वस्थ या निरोग कहलाता है। अत: एक स्वस्थ व्यक्ति के अंग सामान्य संरचना एवं कार्यिकी दर्शाते हैं व वह व्यक्ति मानसिक एवं सामाजिक रूप से स्वस्थ व सामान्य होता है। दूसरी तरफ एकाधिक कारणों से शरीर या शरीर के किसी भाग की सामान्य क्रियाओं में असामान्यता उत्पन्न होने को रोगग्रस्त अवस्था कहते हैं। रोग शरीर की वह अव्यवस्थित क्रिया या विकृति है जो संक्रमण, दूषित आहार, आनुवंशिकी, वातावरणीय या मानसिक असंतुलन के परिणामस्वरूप होती है।

1. संक्रमण (Infections) - यह जैविक कारकों द्वारा होता है जिन्हें रोगजनक कहते हैं, उदा. विषाणु, माइकोप्लाज्मा, क्लेमाइडिया, जीवाणु, कवक, प्रोटोजोआ, हेलमिन्थ आदि।

2. पोषण सम्बन्धी विकृतियाँ (Nutritional Disorders) :- विटामिन, खनिज लवण व ऊर्जा वाले भोजन की अधिकता या कमी से होते है।

3. जैव रासायनिक विकृतियाँ (Biochemical Disorders) :- जैवरसायनों की अधिकता या कमी उदा. हार्मोन, एन्जाइम, यूरिया, यूरिक अम्ल, क्रिएटिनिन।

4. बहिर्जात रासायनिक विकृतियाँ (Exogenous Chemical Disorders) :- प्रदूषक व एलर्जन इन रोगों को उत्पन्न करते हैं।

5. जीवन के तरीकों से सम्बन्धित विकृतियाँ (Life Style Disorders) :- ये भोजन चुनाव, व्यायाम की कमी, बैठे रहने की आदतों, दुर्व्यसनों आदि के कारण होती है।

6. शरीर तंत्र सम्बन्धित विकृतियाँ (Mechanical Disorders) :- अंग भंग, मोच, संधिभंग व चोट लगने से होते है।

7. विघटनकारी विकृतियाँ (Degenerative Disorders) :- ये वृद्धावस्था से सम्बन्धित होती हैं उदा. एथीरोस्कलेरोसिस, अतितनाव, हृदय रोग, संधिशोथ (आर्थिराइटिस)।

8. आनुवंशिक विकृतियाँ (Genetic Disorders) :- ये दोषपूर्ण आनुवंशिकी के कारण होती है। उदा. वर्णान्धिता, हीमोफिलिया,

डाउन सिन्ड्रोम।

9. मानसिक विकृतियाँ (Mental Disorders) :- ये सामाजिक, व्यक्तिगत व विघटनकारी परिवर्तनों के कारण होती हैं।

रोग की दो विस्तृत श्रेणियाँ होती है, जन्मजात व ग्रहित। ग्रहित रोग आगे विस्तृत रूप से संक्रमित व असंक्रमित में विभाजित हो जाते हैं।

जन्मजात रोग (Congenital Diseases) – ये रोग जन्म से ही व्यक्ति में उपस्थित होते हैं। जन्मजात रोग आनुवंशिक (उदा. सिकिल सैल एनीमिया), कार्यिकी व विकास सम्बन्धी दोष वाले (उदा. हेअर लिप्स) व अपरा से स्थानान्तरित होने वाले। (उदा. जर्मन चेचक, उपदंश रोग हो जाते हैं।

ग्रहित रोग (Acquired Diseases) – ये रोग जन्म के बाद विभिन्न कारणों जैसे संक्रमण, विघटन, आहार, दुर्व्यसन, तनाव, उत्परिवर्तन आदि के कारण होते हैं।

ग्रहित रोगों को पुन: दो प्रकार में बांटा जाता है – 1. संक्रामक रोग 2. असंक्रामक रोग।

1. संक्रामक रोग (Infectious Diseases) – ये रोग रोगजनकों व परजीवियों के कारण उत्पन्न होते हैं। ये एक संक्रमित व्यक्ति से स्वस्थ व्यक्ति में पहुँच सकते हैं। संक्रामक रोग इसीलिए **संचरण होने वाले रोग** भी कहलाते हैं। संचरण सीधे या कारक द्वारा जैसे रक्त व सीरम (असंक्रामक) द्वारा हो सकते हैं।

***(i)* छुआछुत के रोग (Contagious Diseases)** – ये रोग स्वस्थ व्यक्ति में सीधे सम्पर्क द्वारा फैलते हैं। उदा. दंद्रु (रिंगवर्म, कंजक्टिवाइटिस)।

***(ii)* अछूआछूत रोग (Non-contagious Diseases)** – संक्रमित कारक वाहक (उदा. डेंगू, मलेरिया), रक्त, सीरम, (उदा. AIDS, सन्निपात ज्वर) द्वारा फैल सकते हैं।

2. असंक्रामक रोग (Non-infectious Diseases) – ये रोग रोगजनकों की अपेक्षा कारकों द्वारा होते हैं। ये एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में सम्पर्क से नहीं फैल सकते हैं। इसलिए, असंक्रमित रोग **असंचरण रोग** भी कहलाते हैं। ये इन्हीं कारणों से प्रत्येक व्यक्ति से जुड़े होते हैं। उदा. कैंसर, एलर्जी, अपूर्णता रोग, चोट आदि। इनके कई प्रकार हो सकते हैं –

***(i)* अपूर्णता रोग (Deficiency Diseases)** – आहार का कोई आवश्यक घटक कम मात्रा में उपलब्ध होता है। उदा. कवाशियोरकोर, रक्त क्षीणता, बेरी–बेरी।

***(ii)* विघटनकारी रोग (Degenerative Diseases)** – ये रोग जीर्णता या वृद्धावस्था के कारण होती है। उदा. एथीरोस्कलेरोसिस।

***(iii)* एलर्जी (Allergy)** – व्यक्ति विदेशी पदार्थों की उपस्थिति से अति तनावग्रस्त हो जाता है। उदा. राइनाइटिस (नासिका सम्बन्धी)।

***(iv)* दुर्व्यसन (Addictions)** – ये रोग व्यसनी बनाने वाली औषधियों, एल्कोहल व तम्बाकू के कारण होती हैं।

***(v)* मानसिक विकृतियाँ (Mental Disorders)**–ये तनाव चिन्ता, मानसिक अयोग्यता, पागलपन, शाइजोफ्रेनिया व मनोविक्षप्ति सम्बन्धित होती है।

***(vi)* कैंसर (Cancers)** – ये मृत्यु के मुख्य कारणों में से एक है जिसमें कोशिकाएँ बराबर विभाजित होना, सामान्य कोशिकाओं का चूर्णित होना व भुखमरी से मर जाना व आवश्यक जैव अंगों का नष्ट होना आरम्भ हो जाता है।

I. संक्रामक रोग
(Infectious diseases)

मानव शरीर में अनेक रोग विभिन्न रोगाणुओं द्वारा होते हैं, इन रोगों को संक्रामक रोग कहते हैं। ये एक व्यक्ति तक प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष संसर्ग द्वारा पहुँचते हैं।

(अ) जीवाणु जनित रोग
(Diseases Causes by Bacteria)

1. कुष्ठ रोग, कौढ़ रोग (Leprosy, Hansen's disease)

यह जीवाणु जनित रोग है। इसका रोगकारक जीवाणु *माइकोबैक्टीरियम लेपरी* है। हर प्रकार का कुष्ठ रोग संक्रामक होता है।

इसमें शरीर का तन्त्रिका तंत्र, माँस पेशियाँ, त्वचा आदि प्रभावित हो जाती हैं तथा अंगुलियों में विकृती उत्पन्न हो जाती है। रोग के लक्षण 1 से 7 वर्ष में प्रदर्शित होने लगते हैं।

घाव से निकलने वाले पदार्थ से रोग का प्रसार होता है। रोगी के साथ लम्बे समय तक रहने से भी इसका प्रसार हो जाता है। कुष्ठ रोग सिर्फ मनुष्य में ही होता है।

कुष्ठ रोग मुख्यतया तीन प्रकार के होते हैं–

(i) ट्यूबरकुलोइड (Tuberculoid)

(ii) लप्रोमेटस (Lepromatous)

(iii) बोर्डर लाइन (Border line)

(अ) कुष्ठ रोग

(ब) डिफ्थेरिया

(स) न्यूमोनिया

चित्र 40.1 : जीवाणु जनित रोग के लक्षण (अ) कुष्ठ रोग (ब) डिफ्थेरिया (स) न्यूमोनिया

कुष्ठ रोग का लक्षण- अंगुलियों में विकृति

(i) ट्यूबरकुलोइड कुष्ठ रोग के रोगी में प्रतिरोधी क्षमता अधिक होती है। इस रोग से त्वचा पर चकते बन जाते हैं। त्वचा पर घाव भी बन जाते हैं। हाथ-पांव तथा ऊंगलियाँ मुड़ जाती है।

(ii) लेप्रोमेटस कुष्ठ रोग के रोगी में प्रतिरोधी क्षमता बहुत कम होती है। इसमें जीवाणु समूह में बन कर ग्लोबी (Globi) के रूप में दिखाई देते हैं। सतह पर गांठे उभर आती हैं, घाव भी हो जाते हैं तथा घावों की संख्या अधिक होती है। कुष्ठ रोग का यह प्रकार अत्यधिक संक्रामक होता है।

(iii) बोर्डर लाइन कुष्ठ रोग के रोगी में उपरोक्त दोनों प्रकार के लक्षण पाये जाते हैं। त्वचा पर चकते बन जाते हैं, गांठे उभर आती हैं तथा घाव बन जाते हैं।

कुष्ठ रोगी को स्वस्थ जन सामान्य से अलग रखना चाहिये। उनके उपयोग के वस्त्र तथा अन्य वस्तुओं को प्रयोग में नहीं लाना चाहिये। इसके रोकथाम के लिए (BCG) का टीका भी लगाया जाता है। यदि पूर्ण अंग ही रोग से ग्रसित हो जावे तो उसे शल्य क्रिया द्वारा पृथक करवा देना चाहिये।

2. क्षय रोग, यक्ष्मा, तपेदिक रोग (Tuberculosis)

क्षय रोग भी मनुष्यों में आमतौर पर पाया जाता हैं। भारत में प्रति हजार पर 15 व्यक्ति इस रोग से पीड़ित होते हैं। *माइकोबैक्टीरियम ट्यूबरक्यूलोसिस* नामक जीवाणु के प्रभाव से मनुष्य में क्षयरोग (T.B.) तथा प्लूरीसी (Pleurisy) जैसे घातक रोग हो जाते हैं। रोग हो जाने पर इसमें खाँसी, बुखार हो जाता है। वजन घटने लग जाता है, थकान महसूस होती है। रोग की निरंतरता से व्यक्ति हड्डियों का ढाँचा बन जाता है। आँखें अंदर धँस जाती हैं। भूख नहीं लगती हैं जिससे रोगी व्यक्ति कमजोर हो जाता है। फेफड़े के क्षय रोग से पीड़ित व्यक्ति के थूक, बलगम, छींक व खांसी से रोगाणु हवा में मिल जाते हैं और स्वस्थ व्यक्ति के श्वास लेने पर उसके शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। शरीर में जब प्रतिरोधी क्षमता कम होती है तब उसके शरीर में रोगाणु अपनी संख्या में तेजी से बढ़ जाते हैं, जो पस या बलगम के साथ बाहर आते हैं, कभी-कभी बलगम में रक्त भी आता है।

इस रोग का प्रसार जल एवं वायु के माध्यम से होता है। रोगी के प्रयोग में आने वाले वस्त्र, बर्तन आदि के उपयोग से भी दूसरे व्यक्ति को यह रोग लग जाता है। क्षय रोग से ग्रसित पशु के दूध में भी रोग के रोगाणु पाये जाते हैं। व्यक्ति जो रोगी के सम्पर्क में रहता है उसमें भी संक्रमण हो सकता है।

रोग से बचाव के लिए व्यक्ति को विशेष सावधानी रखना चाहिये। रोग से ग्रसित व्यक्ति को पृथक रखा जाना चाहिये। उसके वस्त्र, बर्तन आदि गरम पानी में उबाल कर साफ करने चाहिये। रोगी द्वारा त्यागा गया बलगम, मल आदि मिट्टी में दबा दिया जाना चाहिये। दूषित जल, भोजन आदि का सेवन भी नहीं करना चाहिये। रोग से बचने के

लिए BCG टीके लगवाना चाहिये। दूसरों द्वारा इस्तेमाल हुक्के, बीड़ी, सिगरेट आदि इस्तेमाल नहीं करना चाहिये।

3. डिफ्थेरिया, रोहिणी (Diphtheria)

डिफ्थेरिया मनुष्य में एक भयंकर रोग होता है। यह रोग *कोरीनेबैक्टेरियम डिफ्थेरीयाई* नामक जीवाणु द्वारा उत्पन्न होता है। इस रोग में नाक, गला तथा टान्सिल प्रभावित होते हैं एवं विषैला, पदार्थ स्रावित होता हैं, जो अवशोषित होकर रक्त में चला जाता है। इससे मनुष्य की मृत्यु भी हो जाती हैं।

ये जीवाणु रोगी मनुष्य की अंगुलियों के स्पर्श से फैलते हैं, खाने के बर्तन, खिलौने, पेन्सिल आदि वस्तुओं पर स्पर्श से जीवाणु का प्रसारण (Transmission) होता है। इसके अलावा रोग ग्रसित व्यक्ति के छींकने-खाँसने से जो द्रव की बूंदें आती हैं, ये अन्य द्वारा अत: ग्रहण (Inhalation) करने पर भी रोगाणु उसके शरीर में प्रवेश कर जाते हैं।

डिफ्थेरिया रोग से बचने के लिए ग्रसित व्यक्ति को पृथक रखा जाना चाहिये। सभी बच्चों को इस रोग का प्रतिरोधी टीका लगवाना चाहिये। बच्चों को पास्तुरीकृत दूध ही दिया जाना चाहिये।

4. टिटनेस, धनुस्तम्भ (Tetanus)

क्लोस्ट्रिडियम टिटेनी द्वारा उत्पन्न होता है। टिटनेस रोग में सिरदर्द होने लगता है एवं व्यक्ति के जबड़े भिंच जाते हैं। वह खाना निगल नहीं सकता है। उसके साथ ही शरीर में ऐंठन आने लगती है। संक्रमण के 3-4 सप्ताह के भीतर रोग के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। इसके प्रभाव से मनुष्य की मृत्यु तक हो जाती है।

रोग का प्रसारण घाव अथवा त्वचा के कटे फटे स्थान से रोगाणु शरीर में प्रवेश करने से होता है।

रोग से बचाव के लिए- बच्चों में टिटनेस रोग के प्रतिरोधी टीके लगवा लेना चाहिये। टिटनेस टॉक्साइड (Tetanus toxoid) का उपयोग भी लाभकारी होता है। टिटनेस एन्टीटॉक्सिन (Tetanus antitoxin) रोग के लिए प्रभावकारी औषधि है।

टिटनेस का रोग प्रारम्भ में असाध्य था इससे ग्रसित रोगियों में 80 से 90 प्रतिशत की मृत्यु हो जाती थी। यदि समय पर उपचार मिल जावे तो मृत्यु से बचा जा सकता है। आजकल इस रोग से अधिकांशत: मृत्यु नहीं होती है क्योंकि समय पर उपचार कर लिया जाता है। टिटनेस का यह रोग विकासशील देशों में ही जहाँ जलवायु गर्म है, वहाँ अधिक होता हैं।

5. न्यूमोनिया (Pneumonia)

न्यूमोनिया जीवाणु रोग है। यह *डिप्लोकोकस न्यूमोनियाई (Diplococus pneumoniae)* द्वारा उत्पन्न होता है। ये समूह में पाये जाते हैं परन्तु कभी-कभी एकल भी होते हैं।

न्यूमोनिया रोग में व्यक्ति को अधिक ठण्ड लगती है और साथ ही तेज बुखार आता है। यकृत, पित्ताशय में सेप्टीसेमिया (Septicemia) तथा जलन होने लग जाती है। रोगी के छाती में दर्द होने लगता है। रक्त में श्वेताणुओं (WBC) की कमी होने से प्रतिरक्षा (Immunity) की क्षमता में कमी हो जाती है। श्वास लेने में भी कठिनाई आती है। रोग के लक्षण एक से तीन दिन में प्रदर्शित होने लग जाते हैं।

रोग से बचाव के लिए- व्यक्तिगत स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान देकर एवं भीड़ वाले मकानों से दूर रहकर रोगाणु से बचा जा सकता है। इसके अलावा रोगी को पृथक रखकर एवं उसके द्वारा उपयोग में लायी गई वस्तुओं को प्रयोग में नहीं लेने तथा त्यागा गया बलगम आदि मिट्टी में दबा देने से भी रोग से बचा जा सकता है।

6. प्रवाहिका, अतिसार (Diarrhoea)

यह रोग *शाइजेला (Shigella)* समूह के जीवाणुओं द्वारा उत्पन्न होता है।

लक्षण : इस रोग में आन्त्र से अधिक मात्रा में जल एवं विद्युत अपघट्य (Electrolytes) शरीर से बाहर त्यागे जाते हैं। जिससे शरीर में निर्जलीकरण (Dehydration) होता है।

इस रोग में रोगी को उल्टियाँ होने लग जाती है तथा दस्त के साथ श्लेष्मा (Mucus) एवं रक्त (Blood) भी आने लग जाता है। रोगी को बुखार एवं कमजोरी हो जाती है।

रोग से बचाव के लिए पानी को उबालकर तथा छानकर पीने के काम में लेना चाहिये। रोगी द्वारा त्यागे गए मल एवं उल्टी को मिट्टी में दबा देना चाहिये। खुला रखा भोजन एवं सड़े गले फल आदि सेवन नहीं करना चाहिये।

7. मस्तिष्कावरणशोथ (Meningitis)

यह रोग *निस्सेरिया मेनिंजाइटीडीस (Neisseria meningitidis)* जीवाणु द्वारा उत्पन्न होता है। रोगाणु मस्तिष्क (Brain), मेरुरज्जू (Spinal cord) तथा मेरु द्रव्य (Spinal fluid) को संक्रामित करते हैं। इस रोग के कारण अचानक तेज बुखार आने लग जाता है, सिर में दर्द, बैचेनी, उल्टियाँ एवं जलन होने लगती है। यह रोग सम्पर्क द्वारा फैलता है। इसके अलावा रोगी के खाँसने एवं छींकने के समय मुख से निकलकर उड़ने वाली द्रव की बून्दों के निगलने पर प्रसारण सम्भव है। इस रोग के लक्षण 2 से 10 दिन से प्रदर्शित होने लग जाते हैं।

रोग से बचाव के लिए रोगी के द्वारा उपयोग में लाये वस्त्र को पानी में उबाल कर धोना चाहिये, रोगी की कफ, उल्टी एवं मल को मिट्टी में दबा देना चाहिये।

8. सुजाक (Gonorrhea)

यह जननांग सम्बन्धी रोग है, जो जीवाणु *नीस्सेरिया गोनेरियाई* द्वारा उत्पन्न होता है।

लक्षण- ये जीवाणु जननांग के उपकला स्तर पर आक्रमण करते हैं। जिसके कारण 3 से 9 दिन के पश्चात् मूत्रमार्ग (Urethra) से पीले रंग का द्रव स्रावित होने लग जाता है। जननांगों में जलन होने लगती है। स्त्रियों में कुछ ही दिनों में यूरेथ्रीटीस (Urethritis) उत्पन्न हो जाता है तथा उनका मासिक चक्र (Menstrual cycle) भी प्रभावित हो जाता है।

रोगाणु हृदय के कपाट को भी संक्रमित कर एण्डोकार्डिटीस (Endocarditis) रोग उत्पन्न करते हैं।

इस रोग के जीवाणुओं का प्रसारण रोगी व्यक्ति के साथ संभोग (Intercourse) करने से होता है। कभी-कभी रोगी व्यक्ति के उपयोग में आने वाली वस्तुओं के स्पर्श से या सम्पर्क में आने पर प्रसारण होता है।

बचाव के उपचार- रोग से बचने के लिए रोगी को पृथक रखना चाहिये। ऐसी रोगी से यौन सम्पर्क भी नहीं करना चाहिये।

9. हैजा/ विषूचिका (Cholera)

यह जीवाणु जनित रोग *विब्रियो कोलेरी (Vibrio cholerae)* जीवाणु द्वारा उत्पन्न होता है।

लक्षण- इस रोग के हो जाने पर रोगी को उल्टी एवं दस्त प्रारम्भ हो जाती हैं। इससे शरीर में निर्जलीकरण हो जाता है। रोगी में कमजोरी आ जाती है तथा शरीर ठण्डा पड़ने लगता है। पेशाब बन्द हो जाता है। हाथ-पाव में ऐंठन आने लगती हैं।

रोग का प्रसार जल द्वारा होता है।

रोग से बचने के लिए हैजे का टीका लगवाना चाहिये। बासी एवं सड़ीगली खाद्य सामग्री का उपयोग नहीं करना चाहिए। घर एवं आस पास का वातावरण साफ रखना चाहिये।

रोग उपचार के लिए नमक व चीनी युक्त जल का घोल (ORS) प्रभावकारी होता है। रोगी को तरल भोजन चावल का माण्ड दिया जाना चाहिये।

10. मोतीझरा (Typhoid)

यह रोग सालमेन्लेला टाइफी **(Salmonella Typhi)** जीवाणु द्वारा उत्पन्न होता हैं।

लक्षण- (i) रोगी के सिर में दर्द होता है तथा सुस्त बना रहता है। रोगी के पेट में दर्द रहता है। (ii) रोगी को 103°-105° तक ज्वर हो जाता है। (iv) शरीर पर फुन्सियों के समान छोटे-छोटे दाने निकल आते हैं। (v) रोगी व्यक्ति को पतली दस्त एवं पेशाब कम आता है।

रोगी का ज्वर लगभग 15 दिन बाद कम होता है।

इस रोग का प्रसार जल, भोजन, कीट आदि द्वारा होता है। व्यक्तियों का आपसी सम्पर्क से भी इसका प्रसार होता है।

इस रोग से बचाव के लिए मलमूत्र मिट्टी में दबा देना चाहिये। नियन्त्रित भोजन करना चाहिये। खाने में फलों का रस, अण्डा, दूध, चावल का माण्ड लेना चाहिये। रोगी को पृथक रखना चाहिये। टी.ऐ.बी. का टीका लगवाना चाहिये।

11. काली खांसी (Whooping cough)

मनुष्य में यह रोग जीवाणु *बोरडीटेला परटुसिस* (Bordetella Pertussis) द्वारा उत्पन्न होती है। यह रोग लगभग छः सप्ताह तक रहता है।

लक्षण- इस रोग के संक्रमण से व्यक्ति को तेज जुकाम हो जाता है तथा सूखी खांसी भी हो जाती है अर्थात् खांसी के साथ बलगम नहीं आता है। रोगी को हल्का बुखार हो जाता है। खांसी की तीव्रता इतनी अधिक होती है कि खांसते-2 श्वास फूल जाता है तथा हूप-हूप सी आवाज निकलती है।

इस रोग से बचाव के लिए शिशु को ट्रिपल एन्टीजन (DPT) का टीका लगवाना चाहिये।

(ब) विषाणु जनित रोग

(Diseases Caused by Viruses)

1. उपार्जित प्रतिरक्षा अक्षमता संरक्षण (एड्स)

(Aquired immuno deficiency Syndrome-AIDS)

अभी तक यह माना जाता था कि कैन्सर (Cancer) भयानक एवं असाध्य रोग हैं, परन्तु विगत कुछ वर्षों में खोजा गया रोग एड्स, कैन्सर से भी भयानक है एवं इसमें मृत्यु निश्चित रुप से होती है। यह रोग तेजी के साथ विश्व में फैल रहा है। इसे इस सदी का भयंकरतम् रोग माना जा रहा है। आज के आधुनिक युग में भी इसका कोई भी उपचार उपलब्ध नहीं है। अभी तक किये गये अनुसंधानों के आधार पर यही कहा जा सकता है कि बचाव ही एक मात्र उपलब्ध चिकित्सा हैं।

एड्स एक विषाणु जनित रोग है। जो कि एक आर.एन.ए. (RNA) निर्मित रिट्रोवायरस (Retrovirus) ह्यूमन इम्यूनो डेफिसिएन्सी वाइरस, एच.आई.वी. (Human lmmuno

Deficiency Virus-H.I.V.) के संक्रमण के कारण होता है। एड्स के स्वयं के कोई रोग सम्बन्धी लक्षण नहीं होते हैं बल्कि इससे विषाणु के कारण शरीर की रोगप्रतिरोधक प्राकृतिक असंक्राम्यता प्रणाली नष्ट हो जाती है जिसके परिणामस्वरूप शरीर संक्रमणकारी रोगों से बचाव करने योग्य नहीं रह जाता है।

एच.आई.वी. की संरचना – एच.आई.वी. की सतह चारों ओर से फॉस्फोलिपिड की दो परतों (Bilayer) से निर्मित होती है जिसमें दो प्रकार की ग्लाइकोप्रोटीन्स, जी पी–120 एवं जी पी–41 धँसी होती है (चित्र 40.1)। विषाणु के अन्दर मध्य भाग में एक सूत्रीय आर.एन.ए. के दो अणु पाये जाते हैं जिनसे रिवर्स ट्रान्सक्रिप्टेज (Reverse transcriptase) अणु सम्बद्ध होते हैं। आर.एन.ए. अणुओं को घेरते हुए दो प्रोटीन आवरण होते हैं जिनमें आन्तरिक आवरण (Inner coat) P-24 प्रोटीन्स से तथा बाहरी आवरण (Outer coat) P-17 प्रोटीन्स से बना होता है।

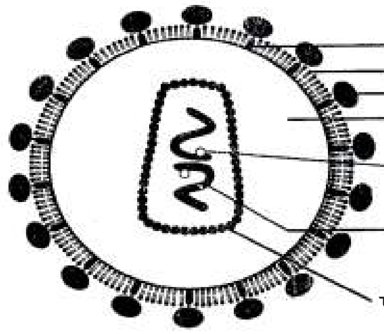

चित्र 40.2 : ह्यूमन इम्यूनोडेफीशियेन्सी वायरस (HIV)

एच.आई.वी. रिवर्स ट्रान्सक्रिप्टेज एन्जाइम की सहायता से RNA से DNA का संश्लेषण कर सकता है। एच.आई.वी. के दो विभेद पाये जाते हैं – एच.आई.वी.–1 एवं एच.आई.वी.–2; जिनमें से वर्तमान में एच.आई.वी.–1 एड्स के लिए जिम्मेदार माना जाता है।

एड्स विषाणु निम्नलिखित विधियों द्वारा एक रोगी या वाहक व्यक्ति से स्वस्थ व्यक्ति में प्रवेश कर सकता है। यह विषाणु रोगी या संवाहक के रक्त एवं यौन द्रव्यों में उपस्थित होता है।

1. असुरक्षित यौन सम्पर्क से।
2. रोगी या संवाहक व्यक्ति से रुधिराधान द्वारा।
3. ऊतक या अंगों के दान से।
4. रोगी द्वारा उपयोग में ली गई सूई का स्वस्थ मानव द्वारा प्रयोग।
5. नशीली औषधियों को इंजेक्शन द्वारा लेने से।
6. संक्रमित माँ से उसके द्वारा पैदा किया जाने वाले शिशु को।

दुख:द स्थिति यह है कि एड्स के विषाणु का संक्रमण होने पर व्यक्ति में एड्स के लक्षण पैदा नहीं होते हैं एवं व्यक्ति कई वर्षों तक सामान्य जीवन व्यतीत कर सकता है। ऐसे व्यक्ति अनजाने में ही दूसरे व्यक्ति को संक्रमित कर देते हैं। एच.आई.वी. हमारे शरीर में प्रवेश कर, हमारे शरीर में विद्यमान रोगों से लड़ने वाली प्रतिरोधक क्षमता को धीरे–धीरे समाप्त कर देता है जिससे रोगी विभिन्न घातक रोगों से ग्रसित हो जाता है और अन्तत: रोगी की मृत्यु हो जाती है। इस रोग में रोगी को लम्बे समय तक बुखार आता है, अत्यधिक वजन घटता है एवं पसीना आता है।

अभी तक एड्स का कोई उपचार नहीं है अत: यह रोग घातक है। इसकी रोकथाम के लिये कोई टीका (Vaccine) भी उपलब्ध नहीं है। हालांकि एड्स के उचार के लिए प्रभावी टीके के निर्माण हेतु भारत समेत विश्वभर के वैज्ञानिक निरन्तर प्रयासरत हैं। कुछ टीकों जैसे HIV-HIG (HIV Hyper-immunoglobulin), बायोसिन (Biocin) इत्यादि का विकास सम्भव हो पाया है किन्तु व्यावहारिक तौर पर अभी तक कोई भी टीका एड्स से पूर्ण बचाव करने में सक्षम नहीं है। हाल ही में ''जर्नल ऑफ वायरोलोजी (मार्च 2008) में उद्धृत एक रिपोर्ट के अनुसार अल्बर्ट आइन्सटीन कॉलेज के शोध दल द्वारा आनुवंशिक रूप से रूपान्तरित (Genetically transformed) साइटोटॉक्सिक टी लसीकाणुओं (CTLs) को उत्पन्न करने में सफलता प्राप्त की है। इन रूपान्तरित लसीकाणुओं की सहायता से भविष्य में एच.आई.वी. संक्रमित कोशिकाओं को प्रभावी रूप से नष्ट किये जाने की प्रबल संभावना व्यक्त की जा रही है। बचाव निर्देशों का अधिकाधिक प्रचार कर, सुरक्षित यौन सम्बन्ध, सुरक्षित रक्त के आदान–प्रदान को अपना कर स्वयं इस रोग से बचा जा सकता है।

इसके बचाव का एक मात्र तरीका है कि जिन कारणों से ये फैलता है उनसे बचा जाए–

1. जब भी इंजैक्शन लगवाने की आवश्यकता हो तो डिस्पोजेबल सूई या फिर साफ निर्जर्मीकृत सूई का प्रयोग करें।
2. अधिकृत रक्त बैंकों से ही एड्स के लिये सुरक्षित रुधिर आदान हेतु उपयोग में लायें।
3. यौन सम्बन्ध सिर्फ एक विश्वसनीय साथी तक सीमित रखें। सुरक्षित यौन सम्बन्ध के लिए निरोध (कण्डोम) का प्रयोग करें। निरोध के प्रयोग से पर्याप्त सीमा तक एड्स से बचा जा सकता है।
4. दूसरे मनुष्य द्वारा उपयोगित सूई से नशीली दवाओं का सेवन न करें।
5. एड्स से पीड़ित महिलायें गर्भ धारण न करें।

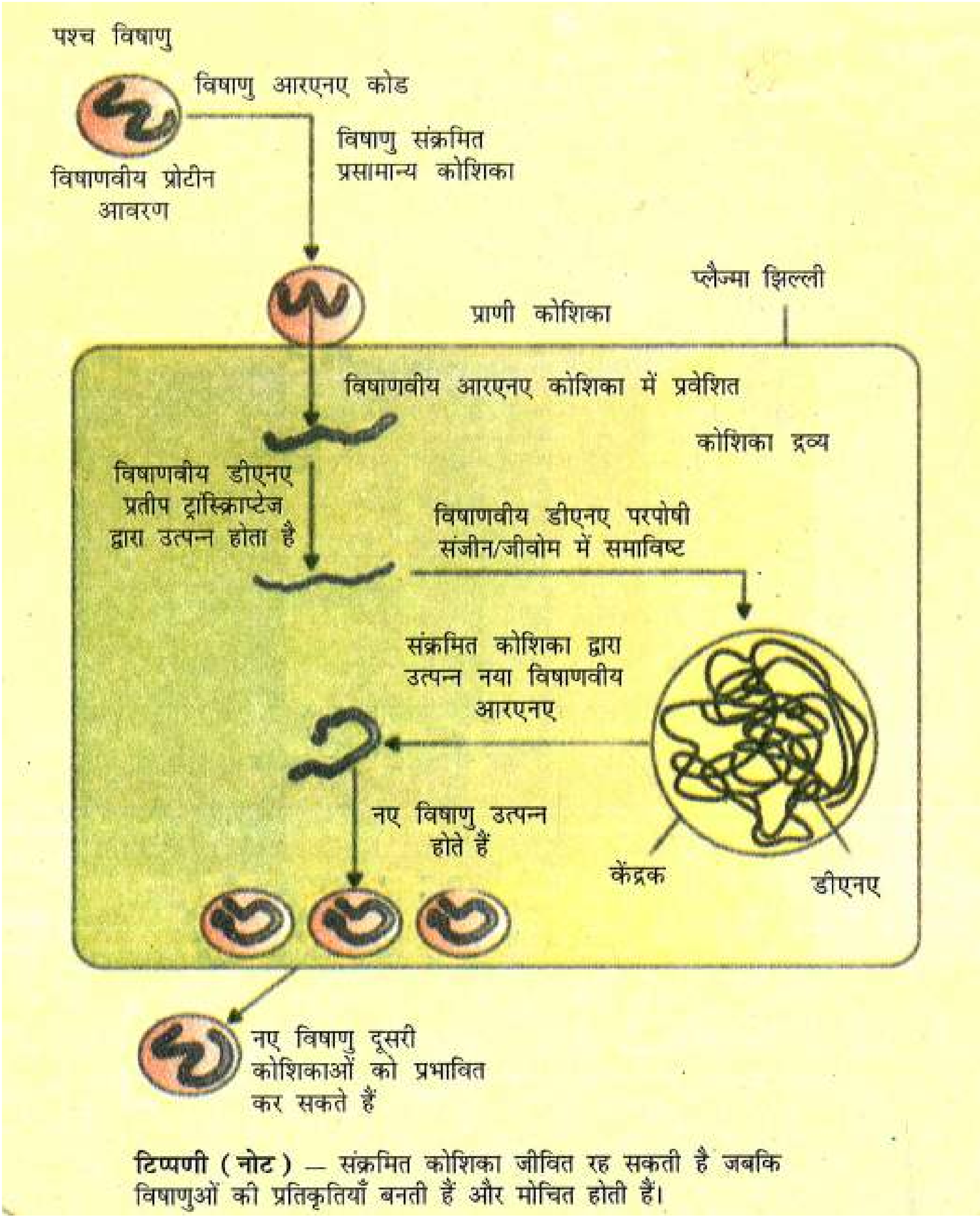

चित्र 40.3 : पश्चविषाणु (रैट्रोवायरस) की प्रतिकृति

निदान (Diagnosis) – एच.आई.वी. के संक्रमण के बाद 6–8 सप्ताह की अवधि में शरीर में स्पष्ट प्रतिरक्षी अनुक्रिया प्रकट होना प्रारम्भ हो जाती है। इसे जाँचने हेतु निम्न परीक्षण किये जाते हैं –

(i) एलाइजा परीक्षण (Enzyme Linked Immunosorbent Assay, ELISA Test) – इसमें AIDS-KIT का प्रयोग करते हैं जो कि एच.आई.वी. प्रतिजन (HIV-Antigens) से युक्त होता है।

(ii) वेस्टर्न ब्लॉट परीक्षण (Western Blot Test) - यह एक अधिक विश्वसनीय व सटीक परीक्षण है जो कि सस्ता तथा कम समय में होने वाला है।

उपचार (Treatment) – एड्स रोग का अभी तक कोई स्थायी एवं कारगर उपचार सम्भव नहीं हो पाया है, केवल इसके कारकों से बचाव ही इसका इलाज है। यद्यपि कुछ औषधियाँ एड्स के उपचार के लिए निर्मित की गई है परन्तु उनमें से कोई भी शत-प्रतिशत कारगर साबित नहीं हुई है। इन औषधियों में ऐजिडोथायमिडीन (AZT), फॉस्कॉर्नेट, डाइडीऑक्सीसाइटीडीन (DDC), D4T (Stavudine) इत्यादि सभी न्यूक्लियोटाइड तुल्यरूप (Nucleotide analogues) हैं जो कि विषाणु RNA से DNA (जीन) के संश्लेषण को रोकती हैं। कुछ अन्य औषधियाँ प्रोटिएज निरोधी हैं जैसे कि सैक्युनैबिर या इनवाइरेज (Saquinavir or Invirase), इन्डीनेविर (Indinavir)

इत्यादि।

एड्स के फैलने के सम्बन्ध में कई भ्रान्तियाँ हैं। लेकिन यह रोग सामान्य सामाजिक सम्पर्क जैसे हाथ मिलाने से, एक ही घर में साथ रहने से, साथ-साथ खेलने, पढ़ने एवं कार्य करने से, साथ-साथ खाना खाने, एक ही शौचालय के प्रयोग से, खाँसने, छींकने, गले मिलने से नहीं फैलता है। मच्छर, खटमल, अन्य कीट पंतगों के काटने से भी एड्स नहीं फैलता है। अत: यह आवश्यक है कि यदि रोगी एड्स से ग्रसित हो तो उस के प्रति उपेक्षा न करके उसके साथ सहानुभूति एवं पूर्ण चिकित्सा करवाना हमारा पुनीत कर्त्तव्य है।

हमारे देश में पहला एच.आई.वी. संक्रमित व्यक्ति 1986 में चेन्नई में मिला। अत: इसे एक मृत्यु वारण्ट (Death warrant) के नाम से जाना जा रहा है। इससे बचाव हेतु सम्पूर्ण दुनियाँ के लोगों में जागरूकता उत्पन्न करने के उद्देश्य से सन् 1988 से प्रतिवर्ष 1 दिसम्बर को **विश्व एड्स दिवस** मनाया जाता है।

इस बीमारी के महामारी के रूप में फैलने की आंशका को देखते हुए भारतवर्ष में भी सन् 1992 में **राष्ट्रीय एड्स नियन्त्रण संगठन** (NACO) का गठन किया गया जो कि राज्य स्तरीय एड्स नियन्त्रण समितियों के साथ मिलकर एड्स की रोकथाम तथा नियन्त्रण हेतु कार्य कर रहा है।

2. पोलियो या बालपक्षाघात (Polio)

पोलियों एक विषाणु जनित रोग है। यह रोग सामान्यत: बच्चों में पाया जाता है जिसके फलस्वरूप बालक अपंग हो जाते हैं।

यह रोग जल एवं खाद्य सामग्री के माध्यम से प्रसारित होता है।

लक्षण- रोगी को रोग के प्रारम्भ में तेज बुखार, खांसी, जुकाम, उल्टी तथा दस्त लगते हैं। तीन-चार दिनों पश्चात् रोगी अपने हाथ-पैर नहीं हिला पाता है। कई बार इस रोग के विषाणु मस्तिष्क एवं मेरूरज्जू में प्रवेश कर जाते हैं जिससे बालक को ताण आने लगती है तथा श्वसन दर कम हो जाती है।

इस रोग के बचाव के लिए 1952 में अमेरिका के जोनास सॉक ने टीके का आविष्कार किया था। एल्बर्ट ने 1955 में इस रोग के बचाव के लिये मुख से पिलाने वाली दवा का आविष्कार किया। यह दवा बच्चों को जन्म के प्रथम वर्ष में तीन बार एक-एक माह के अन्तर से पिलाई जाती है।

3. रेबीज (Rabies)

यह रोग रेबीज विषाणु द्वारा उत्पन्न होता है। इस रोग के विषाणु पागल कुत्तों, बिल्लियों, भेड़ियों, लोमड़ी एवं बन्दर आदि जन्तुओं की लार में पाये जाते हैं। इस रोग के लक्षणों के प्रकट होने के बाद मृत्यु निश्चित है। रेबीज विषाणु द्वारा उत्पन्न रोग को **हाईड्रोफोबिया** (Hydrophobia) कहते हैं जिसका अर्थ जल से भय (Fear of water) होता है।

लक्षण- इस रोग के लक्षण पागल जानवर या कुत्ते के काटने के चार पांच दिन बाद दिखाई देते हैं। काटने के स्थान पर सूजन, दर्द तथा द्रव पदार्थ पीते समय दौरा पड़ता है। रोगी किसी को अपने पास नहीं आने देता है एवं उसके मुख से झाग निकलते हैं। उसे पानी से डर लगता है।

इसके उपचार के लिये कुत्ते के काटने पर घाव की प्रारम्भिक मरहम पट्टी के साथ-साथ उस कुत्ते पर 10 दिन तक निगरानी रखनी चाहिये। यदि इन 10 दिनों बाद कुत्ता पागल हो जाये अथवा मर जाये तो रोगी के उदर में इस रोग के प्रतिरोधक टीके लगाने चाहिये। इस रोग के निदान के लिये **लुई पास्चर** ने 1885 में टीके का आविष्कार किया था। ये 14 टीके उदर में 14 दिन तक लगाये जाते हैं। बहुत अधिक दर्द करते हैं क्योंकि उदरी पेशियों के लिये ये टीके होते हैं। कुछ ही वर्षों पूर्व नये रेबीज के टीके की खोज की गई है। ये टीके तीन एन्जेक्शन के रुप में हाथ पर लगाये जाते हैं। इसे मेरिएक्स ह्यूमन डिपलोइड कोशिका टीके (Merieux human diploid vaccine) कहते हैं। ये टीके सर्वप्रथम अमेरिका में 1980 में प्रयोगों में लाये गये एवं आजकल इनका उपयोग भारत में भी किया जा रहा है।

4. कनफेड या गलसुआ (Mumps)

यह विषाणु जनित रोग बच्चों में पाया जाता है। इस रोग को **एपिडेमिक पेरोटिटिस** भी कहते हैं। रोगाणु लारग्रन्थियों को प्रभावित करते हैं। विशेषकर पैरोटिड ग्रन्थि (Parotid gland) फूल जाती है जिससे भोजन निगलने में असुविधा होती है।

लक्षण- रोग हो जाने पर ठण्ड लगती है तथा बुखार आ जाता है। सिर एवं कान के पीछे वाले भाग एवं गले में दर्द होने लगता है। वयस्क व्यक्ति में इस रोग के दौरान वृषण सामान्य से अधिक बड़े हो जाते हैं तथा वीर्य में शुक्राणु की कमी हो जाती है।

रोग से बचने के लिए रोग युक्त व्यक्ति के सम्पर्क से बचना चाहिये। उसके द्वारा उपयोग में लायी सामग्री का उपयोग नहीं करना चाहिये।

रोग के उपचार के लिए गले में सूजन वाले भाग पर ठण्डी एवं गरम जल की पट्टियों से सेक करना लाभकारी होता है। दर्द निवारण के लिए एस्प्रीन की गोली लेनी चाहिए।

5. जुखाम- फ्लू (Influenza)

यह विषाणु जनित संक्रामक रोग है जो इन्फ्लुएन्जा वायरस द्वारा उत्पन्न होता है। इस रोग का प्रभाव श्वसननली एवं नासिका वेश्म में

अधिक रहता है।

लक्षण– रोगी के सिर, हाथ, पैर एवं कमर में दर्द होने लगता है तथा शरीर में कम्पन होता है। 24 घण्टे की अवधि में तीव्र ज्वर (104^0 F) हो जाता है। छाती में जकड़न एवं दर्द होता है।

रोग का प्रसारण लार द्वारा होता है। व्यक्ति के छींकने, जोर से बोलते समय लार के कण दूर दूर तक फैलते हैं इनके साथ रोगाणु का भी प्रसारण हो जाता है।

रोग से बचाव के लिए आसपास के स्थान को साफ रखना चाहिये रोगी के सम्पर्क से दूर रहें।

6. पीत ज्वर, पीलिया रोग (Jaundice)

यह ज्वर भी विषाणु द्वारा ही उत्पन्न होता है।

इस रोग का प्रसारण अशुद्ध भोजन एवं जल के द्वारा होता है।

लक्षण– रोग होने पर बुखार आने लगता है, भूख नहीं लगती है। रोगी को मूर्छा आ जाती है। इस रोग के कारण वमन, सिरदर्द होने लगता है। व्यक्ति कमजोर हो जाता है उसके यकृत में सूजन आ जाती है। रोग हो जाने के कुछ दिनों बाद रोगी की आंखें, नाखून पीले दिखाई देते हैं। उसके मूत्र का रंग भी पीला होता है।

रोग के उपचार हेतु रोगी को पूरा विश्राम करना चाहिये। भोजन वसा रहित लेना चाहिये एवं उपयुक्त डॉक्टर की परामर्श का पालन करना चाहिये।

7. चेचक, मसूरिका (Smallpox)

यह एक अतिसंक्रामक एवं भयंकर रोग माना जाता रहा है। हमारा देश इस रोग से मुक्त हो गया है। WHO ने घोषणा की कि इस रोग को पृथ्वी से समाप्त कर दिया गया है।

चित्र 40.4 चेचक रोग से ग्रसित बालक

चेचक एक वायरस जनित रोग हैं। इसके वायरस रोगी के रक्त, कंठ एवं नासिका वेश्म में रहते हैं।

छींकने, खाँसने एवं सम्पर्क में आने से रोग का प्रसार होता है।

लक्षण– रोगी को तीव्र ज्वर आता है, उसकी आँखें लाल हो जाती है शरीर कमजोर हो जाता है जिससे वह सुस्त रहता है। संक्रमण के तीसरे दिन बाद त्वचा पर लाल दाने निकल आते हैं जो प्रारम्भ में हाथ–पाँव एवं मुख पर ही दिखाई देते हैं बाद में शरीर के अन्य भागों में निकलते हैं। इन दानों में तरल द्रव भर जाता है। ये दाने एक दिन के बाद सूखने लगते हैं, इस समय भी तेज बुखार आता है जो एक दिन में सामान्य हो जाता है तथा दाने पपड़ी के रुप में गिरने लगते हैं।

घावों को लाल दवा के घोल से धोना चाहिये। पेनिसिलिन एवं सल्फर औषधियों का प्रयोग लाभकारी रहता है। बच्चों को चेचक का टीका लगवा लेना चाहिये।

8. हिपेटाइटिस या यकृत्शोथ (Hepatitis)

यकृत्शोथ या हिपेटाइटिस विषाणु जनित संक्रामक रोग है। यह रोग मुख्यत: बच्चों व वयस्कों को अपना शिकार बनाता है। यद्यपि हिपेटाइटिस रोग छ: भिन्न–भिन्न प्रकार के विषाणुओं द्वारा फैलता है किन्तु उनमें से दो प्रकार के विषाणुओं द्वारा उत्पन्न रोग प्रमुख एवं महत्वपूर्ण है –

1. यकृत्शोथ ''ए'' (Hepatitis-A) – इसे सामान्यत: पीलिया (Jaundice) कहते हैं जिसमें यकृत क्षतिग्रस्त हो जाता है। इस रोग का कारण यकृत्शोथ 'ए' विषाणु (Hepatitis-A virus, HAV) होता है। इसका संक्रमण दूषित भोजन व जल के द्वारा होता है। रोगजनक विषाणु मनुष्य में रोग के समय तथा रोग ठीक होने के बाद भी मिलते हैं तथा मल–मूत्र के साथ बाहर निकलते हैं। अत: यह रोग एक महामारी के रूप में फैल सकता है। बच्चे एवं वयस्क दोनों ही इससे रोगग्रस्त होते हैं। किन्तु वयस्कों में यह अधिक गम्भीर होता है।

2. यकृत्शोथ ''बी'' (Hepatitis-B) – इसे सीरम यकृत्शोथ (Serum hepatitis) भी कहते हैं जो कि यकृतशोथ 'बी' विषाणु (Hepatitis-B-Virus, HBV) के संक्रमण से उत्पन्न होता है। यह विषाणु एच.आई.वी. से भी ज्यादा खतरनाक एक डी.एन.ए. विषाणु है। हिपेटाइटिस–बी वायरस की खोज 1965 में एक ऑस्ट्रेलियन आदिवासी के रक्त में डॉक्टर ब्लुमबर्ग (Dr. Blumbarg) द्वारा की गई। इसीलिए इसे ऑस्ट्रेलयन प्रतिजन (Australia antigen) भी कहते हैं। इस खोज के लिए डॉ. **ब्लुमबर्ग** को 1977 में

नोबल पुरस्कार प्रदान किया गया। इसका संचरण रक्त सम्पर्क से होता है। यह सामान्यत: वयस्कों (Adults) में ही होता है। यकृतशोथ-बी विषाणु निम्नलिखित माध्यमों द्वारा फैलता है -

(i) संक्रमित रक्त आधान द्वारा।

(ii) संक्रमित औजारों एवं सूई के प्रयोग द्वारा।

(iii) संक्रमित गर्भवती महिलाओं से नवजात शिशु में।

(iv) संक्रमित साथी से यौन सम्पर्क द्वारा।

(v) एक ब्लेड से कई लोगों द्वारा दाढ़ी बनाने या एक ही सूई से नाक-कान छिदवाने से।

यकृतशोथ-बी के लक्षण (Symptoms of Hepatitis-B) :- इस रोग से ग्रसित व्यक्ति में ज्वर, पीलिया, वमन, मूत्र का रंग गहरा पीला होना, भूख न लगना आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। यदि रोग लम्बी अवधि तक अनुपचारित रहे तो यकृत कैंसर एवं यकृत में अन्तरालीय सूजन होने की काफी अधिक सम्भावना होती है।

उपरोक्त प्रकार का यकृत्शोथ के अलावा यकृत्शोथ-सी, डी, ई और जी के विषाणुओं द्वारा भी यकृत्शोथ रोग उत्पन्न होते हैं।

निदान (Diagnosis) - यकृत्शोथ विषाणु शरीर में प्रतिरक्षी अनुक्रिया के फलस्वरूप विशिष्ट प्रतिरक्षी या प्रतिपिण्ड के उत्पादन को उद्दीप्त करता है। ये प्रतिरक्षी IgM प्रकार की होती है। अत: दैहिक द्रव्यों (प्रमुखत: सीरम) में विशेष विषाणु से सम्बन्धित विशिष्ट प्रतिरक्षियों की उपस्थिति द्वारा विषाणु के प्रकार की पहचान की जाती है।

रोग से बचाव एवं उपचार (Preventive Measures and Cure)

(i) स्वच्छ जल का प्रयोग करना चाहिए।

(ii) मल-मूत्र विसर्जन के लिए उचित स्वास्थ्यकर सुविधाओं का उपयोग करना चाहिए।

(iii) सदैव डिस्पोजेबल सिरिंज एवं सूई का प्रयोग करना चाहिए।

(iv) ऑपरेशन के औजार पूर्णत: निर्जर्मीकृत होने चाहिए।

(v) संक्रमित रक्ताधान से बचना चाहिए।

(vi) सुरक्षित यौन सम्पर्क स्थापित करना चाहिए।

(vii) यकृत्शोथ उत्पन्न करने वाले विषाणुओं से बचाव हेतु टीके लगवाने चाहिए। वर्तमान में यकृत्शोथ ए एवं बी विषाणुओं से बचाव हेतु टीके उपलब्ध है।

(स) प्रोटोजोआ जनित रोग

(Disease caused by Protozoans)

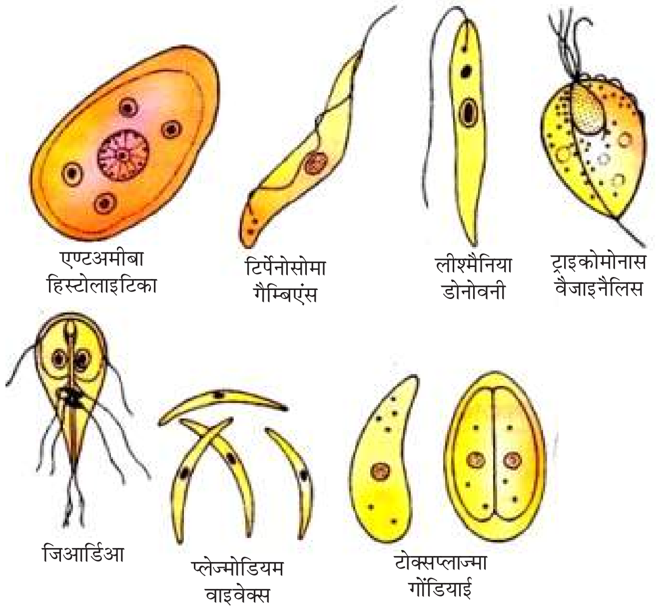

चित्र 40.5 : रोग जनित प्रोटोजोआ संघ के उदाहरण

1. अमीबता या अमीबिएसिस (Amoebiasis)

अमीबिएसिस रोग को अमीबी पेचिश (Amoebic dysentry) भी कहते हैं। यह रोग *एण्टअमीबा हिस्टोलाइटिका (Entamoeba histolytica)* नामक प्रोटोजाआ द्वारा उत्पन्न होता हैं।

लक्षण- इस रोग में जन्तु की ट्रोफोजोइट अवस्था आन्त्र की भित्ति में प्रवेश कर ऊतक-अपघटक एन्जाइम का स्राव करती है जो कोशिकाओं का अपघटन कर देता है। इससे उन स्थानों पर छोटे छालों के समान उभार बन जाते हैं। इनमें श्लेष्मा भरा होता है। ये उभार आन्त्र में फटकर श्लेष्मा स्राव करते हैं जो मल के साथ बाहर आता है।

इस समय रोगी को बुखार तो नहीं आता लेकिन दिन भर पेट में मरोड़े होकर दस्त लगते हैं। दस्त में आँव के साथ रक्त भी निकलता है। रोगी बहुत कमजोर हो जाता है।

रोग का प्रसार मक्खियों, वायु, जल द्वारा होता है।

रोग से बचाव के लिए पानी उबालकर पीने के काम में लेना चाहिये। खुला भोजन एवं अन्य खाद्य सामग्री का सेवन नहीं करना चाहिये। घरेलू मक्खी इस रोग के यांत्रिक वाहक का कार्य करती है।

रोग के इलाज के लिए एमेटिन, फ्यूमैजिलिन, मेट्रेनिडेजोल औषधियों का प्रयोग किया जाना चाहिये।

2. प्रवाहिका, अतिसार (Diarrhoea/ Giardiasis)

यह प्रोटोजोआ जनित रोग है जो ***जिआर्डिआ*** *(Giardia)* नामक कशाभिकीय प्रोटोजोआ से उत्पन्न होता है। यह जल, भोजन आदि माध्यमों से शरीर में प्रवेश कर आन्त्र में पहुँच जाता है इससे आन्त्रिय

अनियमितताएँ हो जाती हैं।

लक्षण– 1. इस रोग के कारण व्यक्ति को पतली दस्त लगने लगती हैं।

2. रोगी के उदर में पीड़ा होती हैं तथा उसे भूख नहीं लगती।

3. सिर में दर्द एवं बैचेनी रहती हैं।

रोग के इलाज के लिए क्लोरोकुनिन, कैमोकुइन एटेब्रिन आदि औषधियों का प्रयोग किया जाता है।

3. ट्रिपैनोसोमिएसिस (Trypanosomiasis)

इसे **निद्रा रोग** (Sleeping sickness) भी कहते हैं। यह रोग ***ट्रिपैनोसोमा गैम्बिएँस*** द्वारा होता है। इसका संचरण सेट्सी (Tsetse) मक्खी ***गलोसाइना पाल्पैलिस*** द्वारा होता है।

यह प्रोटोजोआ हमारे शरीर के लसीका तंत्र में प्रवेश कर विषैले पदार्थो का स्राव करता है जिससे तंत्र में सूजन आ जाती है। लसीका से *ट्रिपैनोसोमा* मस्तिष्क के प्रमस्तिक मेरुद्रव्य में प्रवेश कर मस्तिष्क को क्षति पहुँचाते हैं।

लक्षण– रोग के कारण व्यक्ति निद्रा अवस्था में बना रहता है।

रोग के उपचार के लिए प्राइमाकुइन, प्यूरोमाइसिन का प्रयोग किया जा सकता है।

4. मलेरिया (Malaria)

यह रोग ***प्लेज्मोडियम*** नामक प्रोटोजोआ की विभिन्न जातियों द्वारा उत्पन्न होता है। प्लेज्मोडियम वाइवेक्स, प्लै. फेल्सीपेरम, प्लै. मलेरियाई, प्लै. ओवेल.), सबसे सामान्य जाति *प्ले. वाइवेक्स* है।

रोग का प्रसार मादा **एनोफलिज** मच्छरों के काटने से होता हैं।

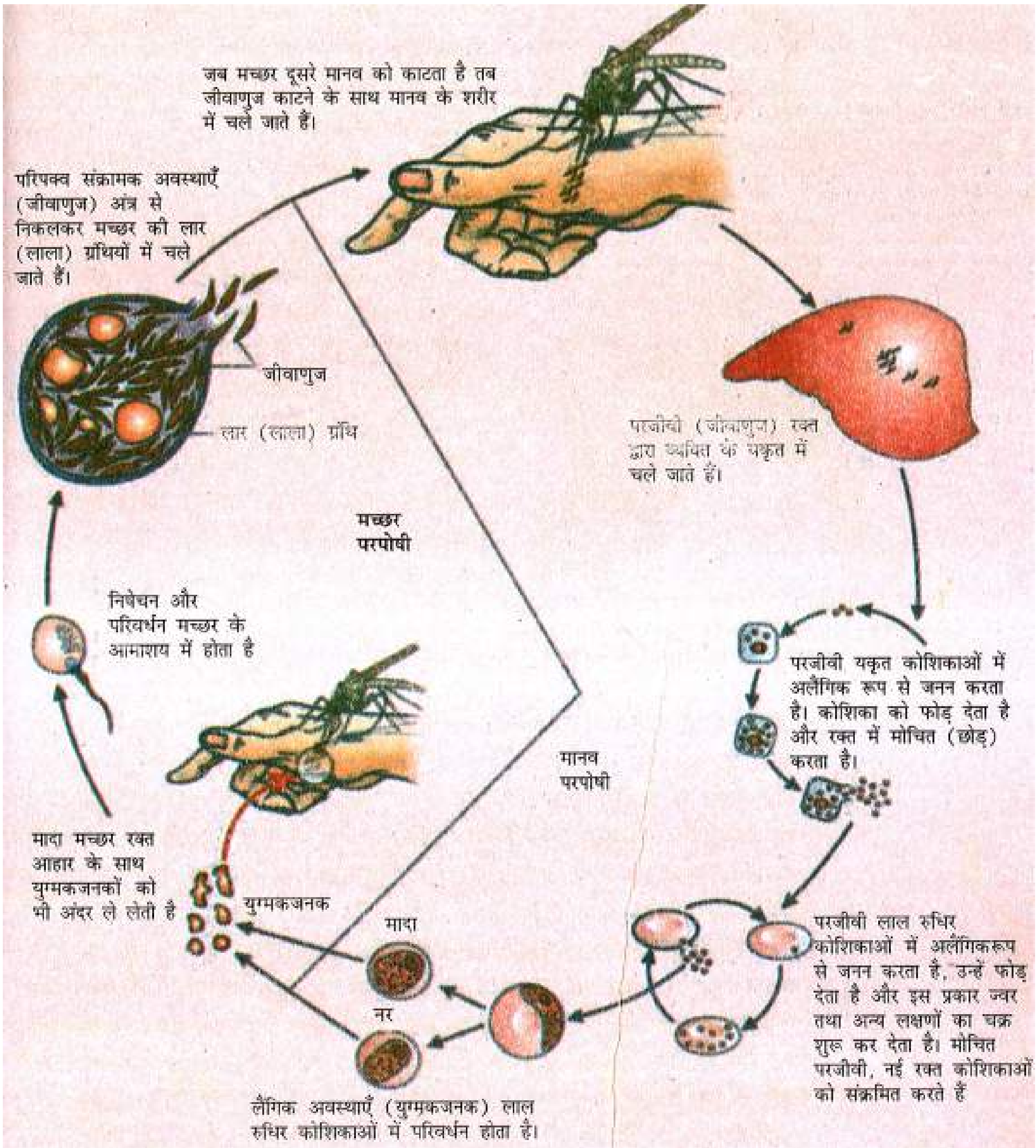

चित्र 40.6 : प्लेज्मोडियम का जीवन चक्र

प्लेज्मोडियम का जीवन-चक्र : तब मादा एनोफेलीज मनुष्य को काटती है। तब स्पोरोज्वाइट के रूप में प्लेज्मोडियम शरीर में प्रवेश करता है। मानव शरीर की यकृत कोशिकाओं व लाल रक्त कणिकाओं में परजीवी गुणन करता है। हीमोज्वाइन बनता है जो कंपकंपी, ठिठुरनर व ज्वर का कारण है, जब मच्छर संक्रमित मनुष्य को काटती है तो परजीवी मच्छर में गेमिटोसाइट के रूप में प्रवेश कर जाते है व परजीवी का आगे का परिवर्धन मच्छर में होता है गेमिटोसाइट से युग्मक जनन द्वारा युग्मक बनते है। तथा निषेचन से युग्मनज का निर्माण होता है। युग्मनज में विभाजन से पुन: स्पोरोज्वाइट बनते है जो मच्छर की लार-ग्रन्थियों में प्रवेश कर जाते है। जब मच्छर मनुष्य को काटता है तो स्पोरोज्वाइट उसके शरीर में प्रवेश कर जाते है। इस रोग के उपचार के लिए एन्टिमनी यौगिक युक्त औषधियों का प्रभाव विशेष लाभ पहुँचाता हैं।

लक्षण- रोग के होने पर सिर में दर्द होना प्रारम्भ हो जाता है। रोगी का जी मिचलाता है एवं उल्टियाँ होने लगती है। सर्दी होकर तेज ज्वर चढ़ता है। रोग से बचने के लिए मलेरिया फैलने के मौसम में 300 मि.ग्रा. कुनैन प्रतिदिन खाते रहना चाहिये। पानी को उबाल कर पीना फल एवं सब्जियों को अच्छी तरह धोकर प्रयोग में लेना चाहिये। आस पास अथवा घर में ठहरे हुये जल का निकास कर देना चाहिये। मच्छरों को फैलने से रोकना एवं उन्हें नष्ट करने के लिए डी.डी.टी., गैमेक्सीन, मिट्टी के तेल का छिड़काव करना चाहिए।

5. लीशमैनिएसिस (Leishmaniasis/ Kala-Azar)

यह रोग *लीशमैनिया* की विभिन्न जातियों द्वारा उत्पन्न होता है। *लीशमैनिया* कशाभीय परजीवी है जो कशेरुकियों के रूधिर में पाया जाता है। काला-आजार (Kala-azar) ***लीशमैनिया डोनोवनी*** द्वारा उत्पन्न होता है।

लक्षण- इस रोग के परजीवी शरीर में जालिका अन्त:स्तर तंत्र - (Reticulo- Endothelial - System) को अवरुद्ध कर देते हैं जिससे प्लीहा अत्यधिक बढ़ जाती है। ये शरीर के विभिन्न भागों में फोड़े समान उभार बना देती हैं विशेष कर नासावेश्म, मुख एवं ग्रसनी भाग प्रभावित होते हैं।

6. ट्राइकोमोनिएसिस (Trichomoniasis)

यह रोग *Toxoplasma* की जातियों द्वारा उत्पन्न होता हैं जो कशाभीय प्रोटोजोआ होते हैं। *ट्राइकोमोनास* की सबसे सामान्य जाति ***ट्राइकोमोनास वैजाइनैलिस*** है। यह प्रोटोजोआ महिला की योनि में रहता है और योनिशोथ (Vaginitis) रोग उत्पन्न करता है।

लक्षण- इस रोग के कारण महिला की योनि से झागदार पदार्थ विसर्जित होता है एवं योनि में खुजली एवं जलन होती है।

7. टोक्सीप्लाज्मोसिस (Toxoplasmosis)

यह रोग ***टोक्सप्लाज्मा गोंडियाई*** से उत्पन्न होता है जो एक स्पोरोजोअन प्रोटोजोआ है। यह विश्व में सभी स्थानों पर पाया जाता है।

लक्षण- यह परजीवी मनुष्य के जालिका, अन्त:स्तरीय तंत्र और केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र की कोशिकाओं में पाया जाता है। जलशीर्ष एवं क्लोरिओरेटिनाइटिस इस रोग के लक्षण है।

(द) हैल्मिन्थीज जनित रोग

(Disease caused by Helminths)

1. एस्केरिऐसिस (Ascariasis)

यह रोग गोलकृमि *एस्केरिस* द्वारा उत्पन्न होता है। यह वयस्क की अपेक्षा बच्चों में अधिक होता हैं। इस कृमि के अण्डे संक्रमित व्यक्ति के मल के साथ आते है व मृदा, जल, पौधों को संदुषित कर देते है। संदुषित जल, भोजन के ग्रहण करने से स्वस्थ मनुष्य में संक्रमण हो जाता है।

कभी-कभी ये आंत्र की उपकला को छेदकर रुधिर प्रवाह में पहुँच जाते हैं, जिससे रक्त द्वारा महत्वपूर्ण अंगों जैसे वृक्क, मेरूरज्जु, मस्तिष्क या माँस पेशियों में पहुँचकर गम्भीर हानि पहुँचाते हैं। फुफ्फुसों में इनके रुकने से उग्ररुधिर स्रावी दशाएँ विकसित हो जाती है। उग्रसंक्रमण होने पर ये घातक परिणामों के साथ तीव्र न्यूमोनिया कर सकते हैं। कभी-कभी इनके संक्रमण के पश्चात् ही ज्वर, रक्तहीनता, श्वेताणुता पेशीय पीड़ा, आंत्र का अवरोध और इओसिनोफीलिया हो जाते हैं।

वयस्क जन्तु प्राय: आंत्रशोथ रोग उत्पन्न करते हैं और जब ये वर्मीफार्म ऐपेन्डिक्स, पित्ताशय, तथा पित्तनली में प्रवास कर जाते हैं तो इन अंगों में सूजन आ जाती हैं। वयस्क जन्तु परपोषी की आंत्र में स्थित भोजन से अपना भोजन प्राप्त करते हैं। ये आंत्र की भित्ति से रुधिर भी चूसते हैं। यह कृमि विषों को उत्पन्न करता है, जो तंत्रिकी लक्षण जैसे ऐंठन, दौरे, मूर्छा, चिरनिद्रा या गहरी नींद और घबराहट उत्पन्न करते हैं।

2. एन्टेरोबिऐसिस (Enterobiasis)

यह रोग ***एन्टेरोबियस वर्मिकुलेरिस*** *(Enterobius vermicularis)* द्वारा उत्पन्न होता है। इन कृमियों को पिन अथवा सीट कृमि भी कहते हैं।

मानव शरीर में ये मलाशय के गुदा भाग के किनारे पर स्थित रहते हैं। यह रोग वयस्क की अपेक्षा बच्चों में अधिक होता हैं।

लक्षण- इस रोग के कारण गुदा के चारों और खुजली होती हैं। भूख कम लगती है तथा नींद नहीं आती है। सोते समय बालक दांत पीसता है तथा बिस्तर में ही पेशाब कर देता है। लड़कियों में ये कृमि योनि में प्रवेश कर वेजिनिटिस रोग उत्पन्न करते हैं।

3. गिनी कृमि रोग (Dracunculosis)

यह ***ड्रेकुनकुलस*** द्वारा उत्पन्न रोग है। इसे **गिनी कृमि** या **नारू** नाम से जाना जाता है। यह मनुष्य में अवत्वक ऊतकों (Subcutaneous tissues) विशेषत: बाहों, टाँगों व कंधों की त्वचा की परतों के नीचे रहता है।

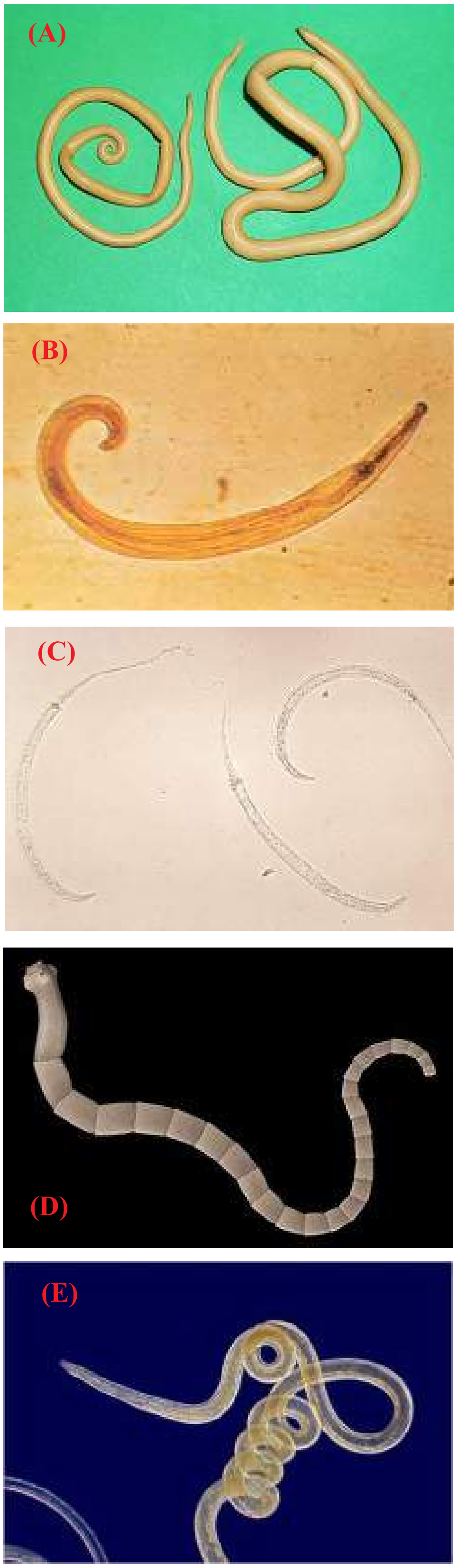

चित्र 40.7 रोग जनित हैल्थिन्थीज संघ के उदाहरण – A. एस्केरिस, B. एन्टेरोबियस, C. ड्रेकुनकुलस D. टीनिया E. फीइलेरिया

लक्षण– संक्रमिक रोगी में अण्डपूर्ण मादा भ्रूण को मुक्त करने के लिये जब मनुष्य की त्वचा से बाहर निकलने का प्रयास करती है तो उस स्थान पर सर्वप्रथम खुजली या जलन होती है। इस जगह मादा कृमि द्वारा स्रावित विषैले पदार्थ के कारण त्वचा पर एक छोटा फफोला या छाला बन जाता है एवं मादा का अग्र सिरा बाहर निकलता है। कृमि के त्वचा से बाहर निकलते समय सामान्य स्थानीय दर्द एवं सूजन देखी जाती है। सामान्यत: फोड़ा कुछ दिनों में ठीक हो जाता है।

रोग के उपचार के लिए कृमि को शल्य क्रिया द्वारा बाहर निकला जाता है। गाँवों में नारु कृमि को जो त्वचा से बाहर निकला रहता है लकड़ी पर लपेट कर सावधानीपूर्वक धीरे-धीरे खींच कर बाहर निकाला जाता है। इसमें कृमि के टूटकर अन्दर ही रह जाने की सम्भावना अधिक रहती है।

4. टीनिऐसिस (Taeniasis)

यह रोग फीताकृमियों की विभिन्न जातियों से उत्पन्न होता है।

लक्षण– रोग के कारण रोगी के उदर में पीड़ा होने लगती है, उसे बार बार वमन होती है। रक्तहीनता की स्थिति उत्पन्न हो जाती हैं। रोगी को भूख अधिक लगती है। अधिक खाने से उसे बदहजमी हो जाती है। परजीवी से उत्पन्न विष पदार्थों से रक्त में इओसिनोफिल कोशिकाओं में वृद्धि एवं तन्त्रिका तंत्र में विकार उत्पन्न हो जाता है।

II. असंक्रामक रोग

(Noninfectious diseases)

शरीर की इन बीमारियों से संक्रमण नहीं होता है। अत: इन्हें असंक्रामक रोग कहते हैं।

1. कैंसर (Cancer)

चिकित्सा जगत में कैंसर आज भी घातक एवं जटिल रोग माना जाता है। ऊतक के आधार पर अर्बुदों का वर्गीकरण भी विशिष्टता लिए हुए है। प्रमुख प्रकार निम्नलिखित माने गये हैं –

(i) कार्सिनोमा (Carcinoma) :- उपकला कोशिकाओं से उत्पन्न होने वाले अर्बुद कार्सिनोमा के नाम से जाना जाते हैं। ये सामान्यतया त्वचा व आन्तरिक अंगों के आस्तरण पर उत्पन्न होते हैं।

(ii) सार्कोमा (Sarcoma) :- संयोजी ऊतक से उत्पन्न दुर्दम अर्बुद सार्कोमा कहलाये हैं। ये सामान्यत: मध्य जनन स्तरीय (Mesoderm) संरचनाओं में बनते हैं।

(iii) ओस्टियोमा (Osteoma) :- अस्थियों में बनने वाले अर्बुदों को ओस्टियोमा कहा जाता है।

(iv) फाइब्रोमा (Fibroma) :- तन्तु जन्य ऊतकों में उत्पन्न फाइब्रोमा प्रकार के होते हैं।

(v) ग्लायोमा (Glioma) :- इस प्रकार के कैन्सर केन्द्रीय

तंत्रिका तंत्र व मस्तिष्क के संयोजी ऊतक में उत्पन्न होते हैं।

(vi) मेलानोमा (Melanoma) :- यह त्वरित गति से बढ़ने वाला रंजक युक्त अर्बुद होता है, जो त्वचा पर उपस्थित विशिष्ट प्रकार की रंजक अतिवृद्धि से उत्पन्न होता है।

(vii) लिम्फोमा (Lymphoma) :- लसिका गांठों एवं लसिका संस्थान के दूसरे ऊतकों पर उत्पन्न होने वाले अर्बुदों को लिम्फोमा के नाम से जाना जाता है।

अनेक लक्षणों के आधार पर पूर्व कैन्सर की अवस्था अथवा कैन्सर के अर्बुद की जांच की जाती है। इसके प्रमुख लक्षण निम्नलिखित हैं –

1. कोई भी सूजन अथवा फोड़ा जो ठीक नहीं होता हो अथवा ठीक होकर पुन: हो जाता है।

2. शरीर में किसी छिद्र से कोई स्राव अनवरत या बारम्बारता से निकलता है।

3. ऊतकों में पाई जाने वाली कोई गांठ अथवा गांठ जैसी रचना का होना, विशेषकर स्तनों में कैन्सर की हो सकती है।

4. अपच अथवा आमाशय में होने वाली असामान्यता जो बारम्बारता प्रदर्शित करें।

5. अधिक कब्ज बने रहना अथवा अधिक दस्तें लगना तथा ये ठीक होकर फिर से बारम्बारता प्रगट करे।

6. अचानक शरीर के वजन में कमी आना।

7. निरन्तर कफ आने की शिकायत अथवा गले खराब होने की शिकायत बने रहना।

कैन्सर उपचार (Cancer Treatment)

कुछ केन्सरो के प्रति वंशागत सुग्राहिता वाले व्यक्तियों में जीनो का पता लगाने के लिए आण्विक जैविकी का प्रयोग होता है। ऐसे जीनो की जाँच आवश्यक है जो व्यक्ति को विशिष्ट केन्सर के प्रति प्रवृत्त करते (Predipose) है।

1. रेडियोथेरेपी : इस चिकित्सा में कैन्सर कोशिकाओं को विकिरण द्वारा नष्ट किया जाता है।

2. कीमोथेरेपी (रसायन चिकित्सा) :- इस चिकित्सा में कैन्सर का उपचार एन्टीकैन्सर दवाइयों से किया जाता है। बालों का झड़ना (Alopecia) व अरक्तता इस चिकित्सा के दुष्प्रभाव है।

आजकल अधिकांश केन्सर का उपचार शल्यक्रम (Surgery), विकिरण चिकित्सा (Radiotherepy) व रसायन चिकित्सा के संयोजन से किया जाता है। केन्सर कोशिकाओं को नष्ट करने में r-इन्टरफेरोन का भी उपयोग किया जाता है। जो शरीर के प्रतिरक्षा तंत्र को सक्रिय कर उसके द्वारा केन्सर कोशिकाओं को नष्ट करता है।

कैन्सर :- मानव शरीर में कोशिकीय विभेदन नियमित होती है लेकिन जब कोशिकाओं में ये नियामक प्रक्रिया खत्म हो जाती है साथ ही सम्पर्क संदमन (सामान्य कोशिकाओं का गुण) के समाप्त होने पर कोशिकाएँ अनियन्त्रित विभाजन करती है फलस्वरूप एक अविभेदित कोशिकीय समूह बनता है जिसे ट्यूमर (Tumour) कहते है।

ट्यूमर के प्रकार :- 1. बिनाइन ट्यूमर (Benign Tumour) 2. मेलीग्नेन्ट ट्यूमर (Malignant Tumour)

बिनाइन ट्यूमर प्राय: अपने उद्गम स्थल तक सीमित होते है इनमें दूसरे भागों तक फैलने की क्षमता नही होती है ये कम हानिकारक होते हैं।

जबकि मेलिग्नेन्ट ट्यूमर केन्सर कहलाते है तथा ये उद्गम स्थल स अन्य भागों तक फैल जाते है तथा एक नया ट्यूमर बनाना प्रारम्भ करती है इस गुण को मेटास्टेसिस (Metastasis) कहते है।

केन्सर का कारण (Causes of Cancer) :- जिन कारकों से सामान्य कोशिकाएँ केन्सर कोशिकाओं में परिवर्तित हो जाती है। उन्हें कार्सिनोजन (Carinogens) कहते हैं ये कारक भौतिक (विकिरण), रासायनिक (तम्बाकू के धुँऐ में उपस्थित) व जैविक (ओन्कोवायरस) हो सकते है।

पराबैंगनी विकिरण (अनायनीकारक विकिरण) डी.एन.ए. में उत्परिवर्तन कर त्वचा केन्सर उत्पन्न करते है जबकि एक्स-किरण (आयनीकारी विकिरण) ल्यूकेमिया (रक्त केन्सर) उत्पन्न करते है।

कैन्सर का निदान (Diagnosis) :- केन्सर का निदान बायोप्सी तथा बढ़ती हुई कोशिकाओं की गणना के लिए रुधिर व अस्थिमज्जा परीक्षण पर आधारित है जैसे ल्यूकेमिया या रक्त केन्सर के मामले में, बायोप्सि में संदेहजनक ऊतक का एक टुकड़ा लेकर उसके पतले काट कर अभिरंजित कर सूक्ष्मदर्शी से जाँचा जाता है।

आन्तरिक अंगों के केन्सर का पता लगाने के लिए रेडियोग्राफी (एक्स किरणों के प्रयोग से), कम्प्यूटेड - टोमोग्राफी (Computed Tomography) व मेग्नेटिक रेजोनेन्स इमेजिंग (MRI) का उपयोग होता है। एम.आर.आई. में तीव्र चुम्बकीय क्षेत्र का प्रयोग व रेडियोग्राफी में एक्स किरणों (आयनीकारक विकिरण) का उपयोग होता है। कुछ केन्सर का पता लगाने के लिए केन्सर विशिष्ट प्रतिजनों के विरूद्ध प्रतिरक्षियों का प्रयोग होता है।

कैन्सर के उपचार में यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि इसकी जानकारी आरम्भिक काल से ही कर ली जाय। अर्बुद बनने के प्रारम्भ से ही इस पर नियन्त्रित आसानी से किया जा सकता है। जब अर्बुद आस-पास अथवा दूरस्थ ऊतकों को प्रभावित करने लगता है तब नियन्त्रण में कठिनाई होती है।

2. एलर्जी (Allergy)

एलर्जी संयोजी ऊतक में उपस्थित मास्ट कोशिकाओं से हिस्टेमीन व सीरोटोनिन के निकलने से उत्पन्न होती है।

वर्तमान में एलर्जी रोग मानव में सामान्य रोग हो गया है। इस रोग में शरीर कुछ रासायनिक एवं भौतिक कारकों के प्रति अति संवेदनशील हो जाता है। कुछ खाद्य पदार्थों, दवाइयों, धूल, पुष्प-सुगन्ध, परागकण, रसायन, सूर्य का प्रकाश, विशेष प्रकार के कपड़े, सर्दी, गर्मी आदि शरीर में संवेदनशीलता उत्पन्न करते हैं। ऐसे कारणों को एलर्जन तथा इसे उत्पन्न होने वाले रोग को एलर्जी कहते हैं। एलर्जन के प्रति बनने वाली एन्टीबॉडी IgE प्रकार की होती है। एलर्जी के लक्षणों में बहती नाक, छींकना व साँस लेने में कठिनाई शामिल है। यह रोग सामान्यत: उन लोगों में अधिक होता है जिनमें प्रतिरक्षा की क्षमता कम होती है। यह रोग वंशागत भी हो सकता है।

3. श्वास या दमा (Asthma)

दमा फुफ्फुसीय अवरोधी रोगों का यह एक उदाहरण है। यह रोग श्वास ब्रोन्किओल्स के संकुचन के कारण उत्पन्न होता है एवं परिणामस्वरूप रोगी को श्वसन में अत्यधिक कठिनाई होती है। श्वास के कारण कष्ट-श्वास, खांसी तथा Wheezing हो जाती हैं। 30 वर्ष से कम आयु के व्यक्तियों को श्वास एलर्जी अतिसुग्राहिता के कारण होता है। यह अधिकतर पौधों के परागकण द्वारा उत्पन्न होती है। अधिक आयु के व्यक्तियों में श्वास वायु में उपस्थित नॉन एलर्जी उत्तेजकों धूल, धूऐं आदि के कारण होता है।

रोग के लक्षण- 1. रोगी की त्वचा पर लाल चकते बन जाते हैं। 2. रोगी को श्वास लेने में कठिनाई होती है। 3. त्वचा पर खुजली होने लगती है। 4. रोगी को जुकाम हो जाता है तथा उसे बार बार छींके आती हैं।

रोग से बचाव के लिए व्यक्ति को उन सभी वस्तुओं से बचने का प्रयास करना चाहिये जिनसे उसे एलर्जी होने का खतरा होता है।

एलर्जी के इलाज से पूर्व यह निर्धारित करना आवश्यक होता है कि किन-किन पदार्थों से ऐसा होता है। प्रतिहिस्टेमीन, एड्रीनेलिन व स्टीराइड के उपयोग से एलर्जी के लक्षणों को कम किया जा सकता है।

4. अतिरक्तदाब (Hypertension)

मानव की धमनियों में रक्त विशेष दाब पर बहता है परन्तु विशेष कारणों से धमनी दाब में वृद्धि हो जाती है। इस समय हृदय में प्रंकुचन दाब 120 mmHg एवं अनुशिथिलन दाब 80mmHg से अधिक होता है। इस तरह इस रोग में हृद निकास (Cardiac output) में वृद्धि हो जाती है।

यदि अतिरिक्त दाब अधिक समय तक बना रहे तो निम्नलिखित घातक परिणाम की सम्भावना रहती है।

(i) हृदपात (Heart failure)

(ii) मस्तिष्क आघात (Brain stroke)

(iii) वृक्क क्षति (Kidney damage)

5. हृदपेशी रोधगलन (Myocardial infarction)

इस रोग का प्रमुख कारण कोरोनरी धमनी में रुधिर आपूर्ति का सहसा कम हो जाना होता है। हृदपेशी के जिस भाग पर रुधिर नहीं पहुँचता है वहाँ ऑक्सीजन की आपूर्ति नहीं होती है। परिणामस्वरूप हृदपेशियाँ कार्य नहीं कर पाती है तथा एक प्रकार से मृत प्राय: हो जाती है। हृदपेशी रोधगलन को हृदय दौरे (Heart attack) का पर्यायनाम कहा जा सकता है।

अंतरोध का प्रमुख कारण कोरोनरी वाहिकाओं में चकता एवं थ्रॉम्बस का निर्माण, बिम्बाणुओं का सक्रियण एवं समुच्चयन तथा वाहिकाओं में एथिरोस्केलेरोसिस उत्पन्न होना है।

लक्षण- वक्ष या सीने में तीव्र वेदना होती है जो सामान्यत: 30 या इससे अधिक मिनटों तक रहती है। दर्द के साथ साथ रोगी को मितली, उल्टियाँ तथा साँस लेने में रुकावट होती है। वेदन हृदशूल के समान ही शरीर में फैलती है। तीव्र हृदयपेशी रोधगलन हो जाने पर रोगी की मृत्यु हो सकती है।

6. वातस्फीति (Emphysema)

यह रोग भी मनुष्यों में अत्यधिक पाया जाता है। यह धूम्रपान एवं वायु प्रदूषकों के दुष्प्रभाव से उत्पन्न चिरकारी फुफ्फुसी रोगों में से एक प्रमुख रोग है। वातस्फीति शब्द से तात्पर्य है फुफ्फुस में अत्यधिक वायु का होना। इसमें फुफ्फुस अप्रत्यास्थ हो जाते हैं। यह सामान्यत: अधिक संख्या में कूपिका या वायुकोश भित्तियों के समाप्त हो जाने के कारण होता है। कूपिका भित्तियों के नष्ट होने के परिणामस्वरूप छोटी-छोटी कूपिकाओं या वायुकोषों के स्थान पर बड़ी-बड़ी वातस्फीति अवकाशिकाएँ बन जाती हैं तथा इन बड़ी कूपिकाओं की प्रत्यास्थता कम हो जाती है। कूपिकाओं की भित्तियों की समाप्ति से कूपिकाओं का कुल पृष्ठीय क्षेत्रफल कम हो जाता है जो कूपिकाओं एवं रुधिर के मध्य गैस विनिमय को प्रभावित करता है।

7. मोतियाबिन्द (Cataract)

आँखों का यह रोग हमारे देश में अत्यधिक पाया जाता है। इस रोग का प्रमुख कारण कुपोषण है। यह रोग वृद्धावस्था में अधिक पाया जाता है। आयु बढ़ने के साथ-साथ आँख का लेंस चपटा, घना और भूरा सा होने लगता है और अन्त में अपारदर्शी हो जाता है जिसके कारण दिखाई देना बन्द हो जाता है। इसी रोग को मोतियाबिन्द कहते हैं। आजकल इस रोग का उपचार शल्य चिकित्सा द्वारा पुराने लेंस को निकालकर नये लेंस का रोपण कर के किया जाता है।

8. सबलबाय (Glaucoma)

आँखों का यह रोग भी बहुतायत में पाया जाता है। यह दोष

जलीय कक्ष व काचाभ कक्ष में अधिक द्रव्य भर जाने से होता है। नेत्रगोलक के जलीय कक्ष एवं काचाभ कक्ष में तरल द्रव्य भरा होता है। इन द्रव्यों के दबाव से नेत्र गोलक की दीवार फैल जाती है और इसके स्तर अपने-अपने स्थान पर बने रहते हैं। अगर यह द्रव्य अधिक मात्रा में हो जाये तो दबाव बढ़ जाता है। इसे ही सबलबाय रोग कहते हैं। इस रोग में दृष्टिपटल क्षतिग्रस्त हो जाता है जिसका परिणाम अंधापन होता है।

9. भेंगापन (Strabismus)

इस प्रकार का नेत्र दोष कई मनुष्यों में पाया जाता है। यह दोष नेत्र पेशियों के कारण होता है। छः नेत्र पेशियाँ नेत्र को नेत्रकोटर के अन्दर घुमाती है। अगर इनमें से कोई एक पेशी कुछ छोटी या बड़ी हो जाती है तो नेत्र, कोटर में कुछ झुका हुआ दिखाई देता है। इसी को भेंगापन कहते हैं। इस दोष को शल्य चिकित्सा से कुछ हद तक दूर किया जा सकता है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. मानव में कई प्रकार की बिमारियाँ पाई जाती हैं। इनमें से अधिकांश रोग रोगजनक जीवों जैसे विषाणु, जीवाणु, कवक, प्रोटोजोआ, हेल्मिन्थ एवं आर्थोपोड द्वारा उत्पन्न होती हैं।
2. मानव में कुछ रोग आनुवंशिक एवं हॉर्मोनों की गड़बड़ी के द्वारा उत्पन्न होते हैं।
3. कई रोग असंक्रामक प्रकार के होते हैं।
4. रोगजनकों एवं मानव अंगों के मध्य होने वाली आपसी क्रिया को संक्रमण कहते हैं।
5. डिफ्थेरिया रोग मनुष्य में कोरीनेबैक्टेरिया *डिफ्थेरियाई* द्वारा होता है।
6. टिटनेस रोग एक आत्मघाती रोग हैं एवं *क्लोस्ट्रोडियम टिटेनी* द्वारा होता है। बच्चों में – रोग से बचने के लिये टिटनेस रोग के प्रतिरोधी टीके लगवा लेना चाहिये।
7. गोनेरिया (सुजाक) एक जननांग सम्बन्धी रोग है जो जीवाणु *नीस्सेरिया गोनेरियाई* से उत्पन्न होता है।
8. मेनिंजाईटिस रोग का सम्बन्ध तंत्रिका तंत्र के अंगों से होता हैं।
9. न्यूमोनिया, संग्रहणी क्षय रोग जीवाणु जनित रोग हैं।
10. कुष्ठ रोग न तो पूर्व जन्म के दुष्कर्मो का फल है एवं न ही आनुवंशिक है।
11. एड्स विषाणु जनित रोग है एवं एच. आई. वी. द्वारा होता है। यह अधिकतर असुरक्षित यौन सम्पर्क से होता है।
12. पोलियो सबसे छोटे विषाणु द्वारा होता है एवं यह रोग बच्चों में पाया जाता है।
13. रेबीज विषाणु द्वारा उत्पन्न रोग को हाइड्रोफोबिया कहते हैं। यह पागल कुत्तों के काटने से उत्पन्न होता हैं।
14. गलसुआ, चेचक, जुकाम, फ्लू एवं पीत ज्वर भी विषाणु जनित रोग हैं।
15. अमीबी पेचिश *एण्टअमीबा हिस्टोलाइटिका* द्वारा होता है।
16. प्रवाहिका, ट्रिपेनोसोमिएसिस, लीशमैनिएसिस एवं ट्राइकोमोनिएसिस कशाभिय प्रोटोजोआ द्वारा उत्पन्न होते हैं।
17. मलेरिया *प्लैज्मोडियम* द्वारा होता है एवं मादा *ऐनोफेलीज* के काटने से फैलता है।
18. हेल्मिन्थीज परजीवियों द्वारा भी कई रोग मनुष्यों में होते हैं उनमें प्रमुख हैं- *टीनिऐसिस, सिस्टिसर्कोसिस, शिस्टोसोमिएसिस, ऐस्केरिएसिस,* ***एन्काइलो स्टेमिएसिस***, गिनी-चर्म रोग आदि प्रमुख हैं।
19. असंक्रामक रोग भी मनुष्य में कई प्रकार के पाये जाते हैं जिनमें कैन्सर अत्यन्त घातक होता है। इसका इलाज अभी तक नहीं खोजा गया है।
20. हृदशूल, हृदपेशी रोधगलन, अतिरक्तदाब, श्वास या दमा, वात स्फीति, मोतियाबिन्द दूरदर्शिता, निकटदर्शिता, सबलवाम, भेंगापन आदि असंक्रमण रोग भी मनुष्यों में पाये जाते हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुवैकल्पिक प्रश्न

1. निम्नलिखित में से किस रोग में अंगुलियों में विकृतियाँ उत्पन्न होती है-
   (अ) टिटनेस (ब) कुष्ठरोग
   (स) क्षय रोग (द) न्यूमोनिया।
2. एड्स रोग निम्नलिखित में से किस प्रकार के विषाणुओं से उत्पन्न होता है-
   (अ) पोलियो विषाणु (ब) एच. आई. वी.
   (स) रेबीज (द) चेचक विषाणु।
3. काला-अजार रोग उत्पन्न होता है-
   (अ) *एण्टअमीबा हिस्टोलाइटिका* से
   (ब) *लीशमैनिया* से
   (स) *ट्रिपैनोसोमा*
   (द) *प्लैज्मोडियम* से।
4. मलेरिया किस मच्छर के काटने से होता है
   (अ) नर *ऐनेफेलीज* (ब) मादा *ऐनेफेलीज*

(स) *क्यूलेक्स* (द) सेट्सी मक्खी।

5. गिनी-वर्म रोग होता है-

(अ) *ड्रेकुनकुलस* द्वारा (ब) *ऐस्केरिस* द्वारा

(स) *एन्टोरोबियस* द्वारा (द) *टीनिया* द्वारा ।

6. किस रोग में प्रारम्भिक अवस्था में पता लगने पर इलाज सम्भव है-

(अ) कैंसर (ब) श्वास

(स) वातस्फीति (द) एलर्जी।

7. निम्नलिखित में से कौनसा रोग आनुवंशिक है-

(अ) दात्र कोशिका अरक्तता (ब) हीमोफिलिया

(स) वर्णान्धता (द) उपरोक्त सभी।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. संक्रामक रोगों से आप क्या समझते हैं? दो रोगों के उदाहरण दीजिये।
2. उपार्जित प्रतिरक्षा अक्षमता सिन्ड्रोम पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।
3. निम्नलिखित पर टिप्पणियाँ लिखिये-

(i) अमीबिएसिस (ii) मलेरिया

(iii) गिनी वर्म रोग (iv) कैन्सर।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. असंक्रामक रोग कौन-कौन होते हैं? दो रोगों का विस्तार से वर्णन कीजिए।
2. प्रोटोजोआ जनित रोगों का वर्णन लिखिये।
3. संक्रामक रोग क्या हैं? किन्हीं दो संक्रामक रोगों का उदाहरण देकर इनका वर्णन करो।

उत्तरमाला - 1. (ब) 2. (ब) 3. (ब) 4. (ब) 5. (अ) 6. (अ) 7. (द)